P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-1) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

'रामचरितमानस' में प्राकृतिक पर्यावरण चेतना

ऋषिपाल
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग,
बाबू अनन्त राम जनता कॉलेज,
कौल, कैथल, हरियाणा, भारत

सारांश

प्राचीनकाल में मनुष्य और प्रकृति का गहरा भावनात्मक सम्बन्ध था। मनुष्य बहुत ही कृतज्ञता से प्रकृति के उपहारों को ग्रहण करता था। संसार की प्रत्येक सभ्यता में प्रकृति की पूजा का प्रावधान है। भारत में भी वैदिककाल से ही प्रकृति के विभिन्न अंगों जैसे धरती, पर्वत, वृक्ष, नदी, जीव–जन्तु आदि की पूजा–अर्चना की जाती थी। मनुष्य की प्रकृति के प्रति असीम श्रद्धा के कारण पर्यावरण स्वतः सुरक्षित था। वैश्वीकरण के दौर में और विकास की अंधी दौड़ में आज मनुष्य ने प्रकृति को अत्याधिक क्षति पहुंचाना आरम्भ कर दिया। आज का मानव स्वार्थ व लालच के वशीभूत होकर प्रकृति का अनावश्यक व क्रूर दोहन कर रहा है। भौतिकवाद के युग में आज का मानव अपनी स्वार्थ पूर्ति एवं विकास के लिए ''कोई भी कीमत'' देने को तैयार है। उस ''कोई भी कीमत'' की सबसे बड़ी कीमत प्रकृति को ही देनी पड़ती है।

मुख्य शब्द : भूमण्डलीकरण, औद्योगीकरण, भौतिकवाद, मनुष्य और प्रकृति।

प्रस्तावना

भूमण्डलीकरण के दौर में अपार औद्योगीकरण वर्तमान में विकास का पर्यायवाची बन गया है। इन औद्योगिक इकाइयों के निर्माण के लिए जंगलों को काटा जा रहा है। खेती के लिए भी रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों का उपयोग बढ़ता जा रहा है। अन्य विकासात्मक कार्य जैसे सड़क निर्माण बांध, रेलवे, खनन, वनों का दोहन, अवैध कटाई आदि पर्यावरण संतुलन बिगाड़ रहे हैं। पिछले कुछ दशकों से पर्यावरण असंतुलन की स्थिति बहुत ही भयानक हो गई है। ग्लेशियरों का पिघलना, अरब के रेगिस्तानों में अधिक वर्षा, ओजोन परत में छिद्र, बाढ़, भूकम्प, अम्ल वर्षा, सदानीरा नदियों का सूखना, फसल चक्र का प्रभावित होना, जैव–विविधता में तीव्र गति से ह्रास होना आदि असंतुलित पर्यावरण की ही अभिव्यक्ति है। इसलिए हमें पर्यावरण की कीमत पर विकास नहीं करना चाहिए क्योंकि विकास से अभिप्राय समग्र विकास होता है, केवल आर्थिक उन्नति नहीं। हमें समझाना होगा कि प्रकृति के प्रति हमारा लगाव हमें किसी भी प्रकार से विकास से वंचित नहीं करता। इसलिए प्रकृति और विकास के बीच सामन्जस्य की नितान्त आवश्यकता है।

गांधी जी ने कहा भी था कि प्रकृति के सहारे हम केवल अपनी आवश्यकता की पूर्ति ही कर सकते हैं, विलासिता की नहीं। वे प्रकृति का सान्निध्य भारतीय संस्कृति की मूल विशेषता मानते थे। स्वतन्त्रता के बाद महात्मा गांधी ने भारतवर्ष में रामराज्य स्थापित करने की कल्पना की थी। गांधी जी के उस स्वप्न एवं विचार की आधारशिला कई सौ वर्ष पूर्व महर्षि बाल्मीकि एवं तुलसीदास जी के द्वारा रखी जा चुकी थी। वे इस रहस्य को भली प्रकार से जानते थे। आज का मनुष्य आत्मकेन्द्रित हो गया है। वह जब किसी से मिलता है तो केवल उसके परिवार व बच्चों के बारे में पूछता है लेकिन अपने मित्र या सम्बन्धी से उस क्षेत्र के वनों, नदियों, तालाबों, पहाड़ों या वन्य जीवों के कुशलक्षेम की बात वह नहीं करता। ऐसा इसलिए है कि वह इन सबको अपने परिवार का अंग ही नहीं मानता। लेकिन प्राचीनकाल में जब लोग एक दूसरे से मिलते थे तो वे वहां के जलस्रोतों, जंगलों, नदियों आदि के बारे में पूछते थे। बाल्मीकि रामायण में इसका बहुत सुन्दर उदाहरण मिलता है। जब चित्रकूट में भगवान राम और भरत आपस में मिलते हैं तो राम अपने भाई भरत से उनके दुःखी होने का कारण पूछते हुए कहते हैं कि क्या उनके राज्य में वन क्षेत्र ठीक नहीं है? क्योंकि वन क्षेत्रों के सुरक्षित होने से लोग खुश रहते थे। बाल्मीकि रामायण में इसका उल्लेख इस प्रकार से मिलता है – कच्चिन्नागवनं गुप्तं कच्चित् ते सन्ति धेनुकाः। कच्चिन्न गणिकाश्वानां कुन्जराणां च तृप्यसि।। (2/100/50)

अर्थात तुम्हारे राज्य में जंगल, हाथी व गाय सुरक्षित हैं। रामचरितमानस में बाल्मीकि जी ने विभिन्न प्रसंगों के द्वारा पर्यावरण संरक्षण के प्रति अपनी

संवेदनशीलता एवं प्रतिबद्धता का उल्लेख किया है। रामचरितमानस में अनेक प्रसंगों में पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता के उदाहरण मिलते हैं। भरत ऋषि के आश्रम में नगरवासियों व अपने सैनिकों को इसलिए साथ नहीं लेकर जाते ताकि वहां का पर्यावरण सुरक्षित रहे – ते वृक्षानुदकं भूमिमाश्रमेकूटजांस्तथा। न हिंस्युरिति तेवाहमेक एवागतस्ततः।। (2/91/09)

पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति संवेदनशीलता का यह सुन्दर उदाहरण है। क्योंकि उस आश्रम के पेड़, पानी, धरती और पर्णशालाओं को क्षति न पहुंचे। इस कारण से मैं स्वयं आया हूँ। इस प्रकार रामराज्य पर्यावरण की दृष्टि से बहुत सम्पन्न एवं समृद्ध था। वनों में बहुत से फूल, फल वाले पेड़ भारी मात्रा में मिलते थे –नित्यमूला नित्यफलास्तरवस्तत्र पुष्पिता। कामवर्षी य पर्जन्यः सुखस्पर्शे मरूतः।। (6/128/13)

वृक्ष फूल, फलों से युक्त थे। बादल लोगों के इच्छानुसार बरसते थे। हवा भी मन्द–मन्द गति से चलती थी। तुलसीदास जी ने उस समय में किसी भी प्रकार का पर्यावरण प्रदूषण नहीं होने की बात कही है। धरती पर अपार वन क्षेत्र था, जिसमें विभिन्न प्रकार के पेड़–पौधे उगे हुए थे। ऋषि–मुनि उन्हीं वन क्षेत्रों में रहकर ज्ञान का प्रचार–प्रसार करते थे। राजा लोग ऋषि–मुनियों का मान–सम्मान करते थे। राम को जब बनवास हुआ तो वे इस बात से खुश थे कि वनों में उन्हें ऋषि–मुनियों का आशीर्वाद प्राप्त होगा –मुनिगन मिलन विशेष वन, सबहिं भांति हित मोर।

प्राचीनकाल में लोगों के मन में वन व वन्यजीवों के प्रति प्रेम स्वतः ही था। सबके मन शान्ति व हृदय प्रसन्नता से भरे रहते थे। बच्चों में संस्कार विद्यमान थे। भगवान श्री राम ने रामराज्य की स्थापना की। रामचरितमानस में तुलसीदास ने विभिन्न स्थानों पर वन क्षेत्रों का सुन्दर वर्णन किया है। वन क्षेत्रों में भोली–भाली आदिवासी जनता रहती थी। भगवान श्रीराम ने उन लोगों से प्रगाढ़ प्रेम व मित्रता की। निषादराज केवट, वानर राज सुग्रीव एवं गिद्धराज जटायु इसका उत्कृष्ट उदाहरण हैं। रामराज्य में प्रकृति के समस्त उपहार स्वतः मिल जाते थे। तुलसीदास ने रामचरितमानस में रामराज्य की सुख–समुद्धि, वनों की सुन्दरता व उनसे प्राप्त होने वाले उपहारों के बारे में लिखा है –

फूलहिं फरहि सदा तरू कानन/
रहहिं एक सँग गज पंचानन।।
खग मृग सहज बयरू बिसराईं
सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।
कूजहिं खग मृग नाना बृंदा।
अभयचरहिं बन करहिं अनंदा।।
सीतल सुरभि पवन बह मंदा।
गुंजत अलि लै चलि मकरंदा।।
लता बिटप मांगे मधुचवहि।
मनभावतो धेनुपय स्रवहीं।।
ससि संपन्न सदा रह धरनी।
त्रेताँ भइ कृतजुग के करनी।।
प्रगटीं गिरिन्ह बिबिध मनि खानी।
जगदातमा भूप जग जानी।।
सरिता सकल बहहिं बर बारी।
सीतल अमल स्वाद सुखकारी।।
सागर निज मरजादाँ रहहीं।
डारहिं रत्न तटहिं नर लहहिं।।
सरसिज संकल सकल तड़ागा।
अति प्रसन्न दसदिसा बिभागा।।
बिधु महि पूर मायूखन्हि
रबि तप जेतनेहि काज।।
मागें बारिद देहिं जल रामचन्द्र के राज।।
(7/23)

राम के राज्य में प्रकृति स्वतः ही सर्वस्व दे देती थी। मनुष्य मात्र चाह रखने से ही तृप्त हो जाता था। उस समय में प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता थी। लोग संयम से रहते थे। प्रकृति का दोहन नहीं हो रहा था। रामराज्य में पर्यावरण दूषित नहीं था। राजा दशरथ, राम, सीता, लक्ष्मण एवं भरत द्वारा पौधे रोपण का कार्य समय–समय पर हुआ। बनवास के समय माता सीता व लक्ष्मण जी द्वारा अपार पौधे रोपित किए गए – तुलसी तरूवर विविध सुहाए। कहुँ–कहुँ सियँ, कहुँ लखन लगाए।।

रामराज्य में प्रकृति के किसी भी अवयव से किसी प्रकार की अनावश्यक छेड़छाड़ नहीं की जाती थी। वनों की कमी के कारण मनुष्य के जीवन में स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। आज हमें आवश्यकता है कि दिनों–दिन बढ़ती प्रदूषण की समस्या से छुटकारा पाने के लिए प्रत्येक शुभ अवसर पर पेड़ लगाए जाएं। आज सुनामी जैसी आपदाओ से हम भयभीत रहते हैं। लेकिन रामराज्य में समुद्र भी अपनी मर्यादा में रहते थे। पर्यावरण संरक्षण को महत्त्व देते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी मानते हैं कि हम वृक्ष से फल तो तोड़कर खा सकते हैं लेकिन पेड़ को जड़ से काटना ठीक नहीं है। वे लिखते हैं :–रीझि–रीझि गुरुदेव सिख सखा सुसाहित साधु। तोरि खाहु फल होइ भलु तरू काटे अपराध।।

वर्तमान में समस्त मानव समाज इस बात को समझ चुका है कि अगर हमें अनेक प्रकार के प्रदूषणों एवं रोगों से दूर रहना है तो हमें पौधारोपण एवं उनकी सुरक्षा के प्रति प्रतिबद्धता दिखानी होगी। इसके लिए हमारी सरकार एवं प्रशासन द्वारा प्रयास ही पर्याप्त नहीं है। रामचरितमानस में अनेक स्थानों पर तुलसीदास जी ने हमें वृक्षारोपण के लिए प्रेरित किया है। वृक्षारोपण के उत्कृष्ट कार्य को उपदेशात्मकता से दूर रखकर एवं स्वाभाविक कार्य बना देना तुलसीदास जी की दूरदर्शिता ही कही जाएगी हम अपने जीवन के शुभअवसरों जैसे विवाह, बच्चा पेदा होने या किसी खुशी के अवसर पर एक पेड़ जरूर रोपित करें, तो यह एक विशेष अनुकरणीय कृत्य होगा। इससे हमारा उस वृक्ष से लगाव भी होगा और उसकी सुरक्षा भी होगी। तुलसीदास जी ने ऐसी परम्परा को शुरू करने की चेष्टा की है। रामचन्द्र जी विवाह के उपरान्त जब वापिस लौटते हैं तो उनके राज्य अयोध्या नगरी में अनेक पेड़ों को रोपित किया जाता है –सफल पूगफल कदलि रसाला। रोपे बकुल कदम्ब तमाला।।

रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा वृक्षारोपण को एक स्वाभाविक कार्य बताया गया है। स्व प्रेरणा से ही प्रत्येक मनुष्य को जब, जहां, जैसे वृक्षारोपण

करना चाहिए। हमारे देश में सड़क, रेलवे लाईन व नहर की पटरियों के किनारे खाली पड़ी जगहों पर वृक्षारोपण करना चाहिए ताकि युद्धस्तर पर पौधे रोपित हों और हमें प्रदूषण से निजात मिले। रामचरितमानस में राम के विवाह के बाद कहते हैं कि :– सफल रसाल पूगफल केरा। रोपहु वीथिन्ह पुर चहुँ फेरा।।

इसी प्रकार शहरी क्षेत्र में भी वन के स्थान पर वाटिका लगाई जा सकती है जिसमें फल, लता, पेड़ आदि रोपित किए जा सकते हैं। अयोध्या नगरी में सभी नगरवासियों ने अपने–अपने घरों में वाटिकाएँ, लताएँ आदि रोपित की थीं। रामचरितमानस में इसका चित्रण मिलता है :– सुमन वाटिका सबहिं लगाईं। विबिध भाँति करि जतन बनाई।। लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा बसंत की नाईं।।

आज लोगों का शहरों के प्रति लगाव दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। लोग गांवों से शहरों में पलायन कर रहे हैं। नगरों की दूषित हवा हमारे जीवन में अनेक रोगों से हमें ग्रस्त कर रही है। शहरों में अधिक से अधिक पेड़ रोपित होने चाहिए जिससे न केवल शहरों की सुन्दरता ही बढ़ेगी बल्कि वातावरण भी शुद्ध रहेगा। गोस्वामी तुलसीदास की नगर वन की अवधारणा में वनों के साथ उपवनों, तालाब, पशु–पक्षी सभी को शामिल किया गया है। अयोध्या नगरी का चित्रण गोस्वामी इस प्रकार से करते हैं :– पुर सोभा कछु बरनि न जाई। बाहरे नगर परम रूचिराई।। देखत पुरी अखिल अद्य भागा। वन उपवन वाटिका तड़ागा।।

रामचरितमानस में तुलसीदास ने पौधारोपण, वनों की रक्षा, पशु–पक्षियों के प्रति प्रेम, प्रकृति के विभिन्न अवयवों की सुरक्षा मानव के स्वाभाविक कर्म में निहित होनी चाहिए।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य 'रामचरितमानस' में प्राकृतिक पर्यावरण चेतना का अध्ययन करना है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि मनुष्य इस प्रकार से अपनी दिनचर्या में प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता दिखाए जिससे धरती प्रदूषण रहित बन जाए। मनुष्य की यही वृत्ति मानव कल्याण के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। पर्यावरण असंतुलन के प्रभावी हल के लिए प्रत्येक व्यक्ति को प्रयास करना होगा। वस्तुतः इसकी दयनीय स्थिति के लिए सरकार या व्यवस्था ही नहीं, हम सभी जिम्मेवार है। हमें मिलकर जीव–जन्तु, वृक्ष, नदी, पर्वत आदि सभी प्रकृति के अंगों की रक्षा करनी होगी। यदि प्रकृति हमारे उपभोग के लिए साधन प्रदान करती है तो हमें भी उसके संवर्धन के लिए कार्य करना होगा। इसी से हमारा पर्यावरण सुन्दर एवं संतुलित बना रहेगा। जिस रामराज्य की अवधारण तुलसीदास जी ने प्रस्तुत की थी तथा महात्मा गांधी जी ने जिसका सपना देखा था, उस रामराज्य को इसी पथ पर चलकर हम धरती पर पुनः स्थापित कर सकते हैं

अंत टिप्पणी

1. *बाल्मीकीय रामायण भाग–1 एवं 2 महर्षिक बाल्मीकि, प्रकाशक – गीता प्रेस, गोरखपुर, उ.प्र.*
2. *गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस, प्रकाशक – गीता प्रेस, गोरखपुर, उ.प्र.*
3. *सिंह, महेन्द्र प्रताप, वाल्मीकि की पर्यावरण चेतना भाग–1 (वनस्पतियां), प्रकाशक – अभ्युदय प्रकाशन, लखनऊ।*
4. *सिंह, महेन्द्र प्रताप, मानस में प्रकृति विषयक, प्रकाशक – पर्यावरण ज्ञानयज्ञ समिति, लखनऊ।*
5. *सिंह, महेन्द्र प्रताप, तुलसी की अन्तर्दृष्टि, प्रकाशक – उद्योग नगर प्रकाशन, गाजियाबाद।*
6. *श्रीवास्तव, मनोज (2010) पर्यावरण प्रदूषण के खतरे, ग्लोबल ग्रीनस, इलाहाबाद।*
7. *चौधरी, बीएल एवं प्रसाद, जीतेन्द्र (2013) पर्यावरण अध्ययन, एसएफ पब्लिकेशन्स हाऊस, दरियागंज, नई दिल्ली।*